भूमिका

प्रेमचंद और शरतचन्द्र ने आधुनिक कथा साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। एक हिन्दी तो दूसरे बांग्ला साहित्य के मील के पत्थर हैं। ये दोनों महान कलाकार 19वीं सदी की देन हैं। इन दोनों महान लेखकों का कार्यकाल और कार्यक्षेत्र लगभग समान है। आज हिन्दी और बांग्ला कथा साहित्य जिस बुलंदी पर है उसके पीछे प्रेमचंद और शरतचंद्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'धर्म', 'दर्शन', 'समाज', 'राजनीति' साहित्य' इतिहास आदि पर आलोचना करते हुए युगीन आलोचक आज भी प्रेमचंद और शरतचन्द्र को अनदेखा नहीं कर सकते है।

युगीन राजनीतिक हलचलों से ये दोनों कलाकार गंभीर रूप से जुड़े हुए थे। कदाचित ये युग की मांग भी थी। देश को पराधीनता की जंजीरों से बंधे देखना इनको स्वीकार नहीं था। प्रेमचंद और शरतचन्द्र के तीखे तेवर और भाषण इसके प्रमाण हैं। 'कांग्रेस' की गतिविधियों से ये दोनों बराबर जुड़े हुए थे। स्वाधीनता प्राप्ति ही इनका एकमात्र लक्ष्य था। प्रेमचंद और शरतचन्द्र को व्यक्तिगत साधना और सामाजिक कर्मों के लिए युगों–युगों तक याद रखा जायेगा। भाषा, शिल्प, कथ्य, विषय आदि के परिमार्जन के कारण साहित्य तो इनका ऋणी है ही, साथ ही सामाजिक अवदानों के कारण ये पुरुष समाज में अमर हो गये हैं।

चिन्तन के धरातल पर अपने प्रारंभिक समय में हम शरतचन्द्र को पाश्चात्य सिद्धांतों से अधिक प्रभावित पाते हैं। उनके उपन्यासों में हम तार्किक चिंतन के प्रभाव को पाते हैं। यद्यपि वे 'भारतीय दर्शन' के चिंतन से भी काफी प्रभावित थे। हम कह सकते हैं कि, शरतचन्द्र ने विदेशी तार्किक चिंतन और भारतीय दर्शन पद्धति दोनों के सहयोग से अपनी नई चिंतन पद्धति–विकसित की है। शरतचन्द्र के नारी संबंधी विचार इसके सशक्त उदारहण है।

दूसरी ओर प्रेमचंद के चिंतन में भारतीय दर्शन का प्रभाव अधिक है। यथा स्थान तर्क उनके पात्र भी करते हैं, किन्तु ऐसे तर्क में विदेशी चिंतन पद्धति को खोजना लेखक के प्रतिभा के साथ अन्याय करना होगा। जिस तार्किक पद्धति का

परिचय 'शेष प्रश्न' की कमल देती है, उसे कर्मभूमि की सुखदा' की पद्धति मेल नहीं खाती है।

हिन्दी प्रदेश में नवजागरण को उन्हीं अर्थों में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, जिन अर्थों में बंगाल में नवजागरण को देखा जाता है। हिन्दी प्रदेश में कुछ कठिनाइयां और असुविधाएं थीं। वहां न तो धर्म बनाम मानवतावाद की चर्चा विशद रूप में हुई और न ही कला ज्ञान के क्षेत्र में कोई बहुत बड़ा विस्फोट। यूरोप के नवजागरण में धर्म विषयक चर्चाओं के कारण धर्म का प्रभाव घटता हुआ दिखाई देता है जबकि हिन्दी प्रदेश के नवजागरण में धर्म का सामाजिक प्रभाव और बढ़ा। धर्म के आधार पर राजनैतिक, सामाजिक लाभ के कई स्तरों पर प्रयत्न हुए। हम कह सकते है कि इस समय धर्म का राजनीतिकरण किया जाने लगा। इस संदर्भ पर चर्चा करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं ''हमारे इतिहास में राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद दोनों एक ही साथ पैदा हुए हैं....कि कहीं एक ही सिक्के के दो पहलू तो नहीं इसकी भी जांच की जानी चाहिए। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूं कि राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ–साथ इस देश में पहली बार, धर्म के आधार पर दो बड़े धर्मों को मानने वाले जन–समूहों को एक नाम दिया गया। दोनों को अपनी पहचान बनाने की चिंता हुई। 'हिन्दू आइडेन्टीटी' और 'मुस्लिम आइडेन्टीटी'। जिसे हम 19वीं शदी का जागरण कहते हैं, उस जागरण में ''हिन्दू नवजागरण'' और ''मुस्लिम नवजागरण'' ये दोनों साथ–साथ घटित हुए और इन दोनों नवजागरण के साथ ही हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद का भी विकास हुआ। हमारा राष्ट्रीय आंदोलन उ[1]सी नवजागरण की संतान है। इसलिए 'राष्ट्रवाद' और 'हिन्दू–जातीयता' और मुस्लिम कौमियत' ये साथ–साथ पैदा हुई।'(समाचार सुध वर्षण, 1954, कलकत्ता।)

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'हिन्दी नवजागरण' पर चिंतन मनन किया है। उन्होंने 1857 के स्वाधीनता संग्राम से ही हिन्दी नवजागरण का आरंभ माना है। डॉ. शर्मा ने हिन्दी प्रदेश में वैचारिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में जनजागरण शब्द का प्रयोग किया है। पश्चात उन्होंने इसको दो वर्गों में विभाजित किया है। सामंतवाद विरोधी

जनजागरण और साम्राज्यवाद विरोधी जनजागरण। शर्मा जी आधुनिक जातियों के गण से जनजागरण की भूमिका को जोड़ते हैं।

प्रेमचंद तक आते–आते हिन्दी नवजागरण एक अलग करवट लेता है। प्रेमचंद ने एक सजग लेखक की तरह न केवल साहित्य बल्कि पूरे हिन्दी समाज को गतिशीलता प्रदान की। प्रेमचंद का लेखन रूढ़ आडम्बरों, अंधविश्वासों और नीति एवं विचारों से टकराता है और साथ ही जनजागरण की एक नई दिशा प्रशस्त करता है। हिन्दी नवजागरण का ढांचा तैयार करने में प्रेमचंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उनके लेखन में हम डॉ. शर्मा द्वारा चर्चित सामंतवाद विरोधी पहलू और साम्राज्यवाद विरोधी पहलू को पाते हैं। हम कह सकते हैं कि आलोचना के क्षेत्र में जिन मुद्दों को डॉ. रामविलास शर्मा ने उठाया है, उन्हीं मुद्दों को प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में मूर्त रूपाकार प्रदान किया है।

हिन्दी प्रदेश में हिन्दू–मुस्लिम जातीयता पर विस्तृत चर्चा डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने भी किया है। अपने शोध प्रबंध में उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम संबंध और स्वाधीनता आंदोलन में पड़ने वाले इसके प्रभाव पर विस्तार से विचार किया है। वह लिखते हैं, "प्रेमचंद का रचनाकाल वही है, जो भारतीय स्वाधीनता संग्राम का मुख्य काल है। प्रेमचंद ने स्वाधीनता संग्राम के उतार–चढ़ाव को देखा था, उसके बारे में गंभीरता से सोचा समझा था। अपने सीमित दायरे में वे स्वाधीनता संग्राम से जुड़े भी थे। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप उनके कथा–साहित्य में स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न पक्ष भी विवेचित हुए हैं।

जिस समय स्वाधीनता संग्रामा क्रमशः अपने लक्ष्य के सन्निकट पहुंच रहा था, उसे कमजोर करने की अनेक कोशिशें की गयी। कभी बाहरी तो कभी भीतरी शक्तियों द्वारा मार्ग में अनेक अवरोध पड़ते रहे। अंग्रेजी सरकार अपना राज कायम रखने और स्वाधीनता संग्राम को कमजोर बनाने के लिए बल और छल दोनों का सहारा ले रही थी। भारतीय जनता में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने धर्म का इस्तेमाल हथियार के रूप में किया। तत्कालीन भारतीय समाज की पृष्ठभूमि उनके कार्य में सहायक सिद्ध हुई और साम्प्रदायिक ताकतों का उभार हुआ। परिणामस्वरूप

हिन्दुओं–मुसलमानों का वैमनस्य खुलकर सामने आया। दोनों एक दूसरे की अस्मिता समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गये। ऐसा भी नहीं था कि इस संघर्ष में दोनों सम्प्रदायों का संपूर्ण वर्ग हिस्सा ले रहा था। दोनों में अभी भी ऐसे लोग थे, जो पारस्परिक एकता के महत्त्व को समझ रहे थे और इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील भी थे।''(प्रेमचंद के कथा साहित्य में हिन्दू–मुस्लिम संबंध, पृ. 7)

प्रेमचंद और शरतचन्द्र भी इन्हीं लोगों में से थे। विभाजन की घोषणा से दोनों लेखक शोकाहत हुए थे। दोनों लेखकों ने कठोर शब्दों में इस कुकृत्य की बुराई की। प्रेमचंद ने 'हिन्दू–मुस्लिम एकता' शीर्षक से एक लंबी निबंध लिखी। इसमें उन्होंने आपसी भेद–भाव को दूर करने की अपील की ''...यो तो हिन्दू–हिन्दू में, जाति–जाति में, वर्ग–वर्ग में भेद है और उन भेदों पर हम लड़ने लग जाए, तो जीवन नरक तुल्य हो जाये।'' (संपा. कमल किशोर गोयनका, निर्मल वर्मा, प्रेमचंद रचना संचयन, पृ. 744) स्पष्ट है कि जातिगत संत्रास से प्रेमचंद काफी आहत थे।

प्रेमचंद और शरतचन्द्र का लेखन साहित्योन्मुख तो था ही, समाजोन्मुख भी था। प्रेमचंद का मानना था कि, साहित्य समाज को आलोकित करने वाला मशाल है और प्रेमचंद के इस मत से शरतचन्द्र भी पूरी तरह सहमत थे। बल्कि शरतचन्द्र की दृष्टि में साहित्य वह हथियार है, जिससे समाज में विप्लव लाया जा सकता है।

कोई भी उपन्यास या कहानी केवल अपने कथ्य के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं होती, बल्कि कथा कहने की कला भी काफी महत्वपूर्ण होती है। प्रेमचंद और शरतचन्द्र की विशेषता यही है कि इन्होंने कथा लिखी नहीं बल्कि कही है। अलग–अलग प्रकार की कथाएं अलग–अलग भाषा की मांग करती है। कथा में चित्रित प्रत्येक चरित्र की अपनी एक अलग भाषा होती है, जिसकी निर्मिति देशकाल वातावरण इत्यादि करता है। प्रेमचंद और शरतचन्द्र को चरित्रानुकूल भाषा सृजन करने में महारत हासिल है।

प्रस्तुत शोध में इन दोनों लेखकों के समग्र साहित्य को स्वाधीनता आंदोलन के आलोक और संदर्भ में देखने की कोशिश की गयी है। ''स्वाधीनता'' युग की मांग थी,

यह मांग जितनी राजनीतिक धरातल पर थी, उतनी ही सामाजिक धरातल पर भी। अस्तु प्रस्तुत शोध में प्रेमचंद और शरतचन्द्र की साहित्यिक महत्ता को राजनीतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से विचार एवं विश्लेषण किया गया है।

इस शोध प्रबंध में सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में स्वाधीनता आंदोलन शरतचन्द्र और प्रेमचंद की भूमिकाओं पर चर्चा की गयी है। इस अध्याय में उन प्रश्नों को उठाया गया है, जिसको स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ये लेखक स्वर प्रदान कर रहे थे। साथ में ये लेखक व्यक्तिगत रूप से कितने स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े रहे इसको भी रेखांकित करने की कोशिश की गयी है। शरतचन्द्र और प्रेमचंद दोनों लेखक कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता भी थे। शरतचन्द्र हावड़ा कांग्रेस कमेटी के सभापति तक रह चुके थे। दोनों ही लेखक स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रूप से हिस्सा लेते हुए जेल तक की यात्रा करने को तैयार थे। प्रेमचंद और शरतचन्द्र द्वारा लिखे गये व्यक्तिगत पत्रों के जरिए इन लेखकों के स्वाधीनता आंदोलन में व्यक्तिगत रुचि को उद्घाटित और विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है।

शोध के दूसरे अध्याय में शरतचन्द्र और प्रेमचंद के साहित्यिक अवदानों को उद्धृत करने की कोशिश की गयी है। अपनी रचनाओं के माध्यम से ये लेखक आंदोलन को कितनी गति प्रदान कर रहे थे, प्रस्तुत अध्याय में इस तथ्य को आलोकित करने की कोशिश की गयी हे। ध्यातव्य होना चाहिए कि दोनों ही लेखकों की रचनाओं पर अंग्रेजी हुकूमत की पैनी दृष्टि रहती थी। प्रेमचंद के 'सोजेवतन' और शरतबाबू' की 'पथेरदाबी' को अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन भी बनना पड़ा था।

शोध के तीसरे अध्याय में शरतचन्द्र और प्रेमचंद की राष्ट्रवादी स्वरूप को दर्शाया गया है। राष्ट्रवादी समस्याओं को उद्घाटित करते हुए प्रेमचंद और शरतचन्द्र की राष्ट्रवादी भावनाओं को यहां अभिव्यक्ति दी गयी है। दोनों लेखक राष्ट्रवादी भावनाओं से ओतप्रोत थे। गांधी जी द्वारा चलाए गए स्वदेशी, सत्याग्रह, असहयोग, बॉयकॉट, इत्यादि को इन दोनों लेखकों ने खुले दिल से स्वागत किया। भारतीय पंरपरा, संस्कृति की मनोरम झांकियां पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर इन लेखकों ने विदेशी हो चले स्वदेशी व्यक्तियों को स्थिर और शांत किया। ये लेखक अंध भक्त भी

नहीं थे, एक सचेत लेखक का परिचय देते हुए भारत में रूढ़ हो चली परंपराओं की आलोचना भी करते हैं और साथ ही समाधान की ओर संकेत भी।

शोध के चौथे अध्याय में प्रेमचंद और शरतचन्द्र द्वारा उठाए गए राजनीतिक समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। इस अध्याय में दोनों लेखकों के सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद विरोधी विचारों को रेखांकित किया गया है। साथ ही साम्प्रदायिकता जैसे ज्वलंत प्रश्नों से ये लेखक किस तरह मुखामुख हो रहे थे, इसको भी उद्घाटित करने की कोशिश की गयी है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन एक साथ कई क्षेत्रों में लड़ा जा रहा था। यह आंदोलन जितना आंतरिक था उतना ही बाह्य भी। 'स्वाधीनता आंदोलन' के विविध पक्षों को दर्शाना ही प्रस्तुत शोध का केन्द्रीय विषय है।

शोध के पांचवे अध्याय में शरतचन्द्र और प्रेमचंद द्वारा चित्रित सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। इसके अंतर्गत दोनों लेखकों की स्त्री, शिक्षा, जातिगत आदि संबंधी विचारों एवं मतों पर चर्चा की गयी हैं ये सारे प्रश्न स्वाधीनता आंदोलन के आंतरिक पक्षों को उजागर करते हैं। राजनीतिक स्वाधीनता तो युग की मांग थी ही, साथ ही ये लेखक इन रूढ़ सामाजिक समस्याओं को भी अपने लेखन में स्थान दिया और स्वाधीनता आंदोलन के सामाजिक पक्ष को नवीन परिभाषा प्रदान कर पुनः परिभाषित किया। भारतीय समाज में स्त्रियों के अधिकारों की स्वतंत्रता, शिक्षा पाने की स्वतंत्रता, जातिगत भेदभाव से स्वतंत्रता आदि उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के दासत्व से स्वतंत्रता। प्रेमचंद और शरतचन्द्र ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था।

शोध का छठा अध्याय किसान जीवन की समस्याओं को लेकर है। युगीन समाज में किसान तीहरे शोषण चक्र में पिस रहा था। सरकार, साहूकार और महाजन। ऊपर से मर्यादा निर्वाह करने का अंधविश्वास इन सब कारणों से किसानों की स्थिति बहुत दयनिय थी। उनसे उनकी जमीन धीरे–धीरे साहूकार और महाजनों ने हथिया ली। नौबत यहां तक आ गयी कि अपनी ही जमीन में किसान मजदूरी करने लगे। वे किसान से मजदूर बन गये। लगान का बोझ इतना बढ़ गया कि अदा

करना असंभव हो गया और दबाव में किसानों ने आत्महत्या करना शुरू कर दिया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में लगान, सूदखोरी, अकाल जैसे प्रश्नों को चित्रित किया है। उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' किसान जीवन की त्रासदी पर ही आधारित है। दूसरी ओर शरतचन्द्र के उपन्यासों में शहरी जीवन ही अधिक चित्रित हुआ है। फिर भी उन्होंने अपने कुछेक उपन्यासों में किसानों की दरिद्रता का वर्णन किया है। सीमित वर्णन होने के बावजूद इसकी महत्ता शरतचन्द्र के यहां कम नहीं हो जाती है। समग्र में कहें तो इन दोनों रचनाकारों ने किसान जीवन की समस्याओं को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। इस ज्वलंत प्रश्न को इन दोनों लेखकों ने अपने उपन्यासों में न केवल स्थान दिया है बल्कि इसके महत्त्व को भी पाठकों के समक्ष उद्‌घाटित किया है।

शोध के अंतिम अध्याय में प्रेमचंद और शरतचन्द्र का तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इस अध्याय में दोनों लेखकों के बीच समानता, विविधता और विशिष्टताओं पर विचार किया गया है। दोनों लेखकों के बीच तुलना करते हुए यहां आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया गया है और सार्थक मूल्यांकन तक पहुंचने का प्रयास किया गया है। संपूर्ण शोध का उपसंहार भी इसी अध्याय में समाहित हैं। प्रेमचंद और शरतचन्द्र के बीच तुलनात्मक मूल्यांकन, युगीन परिस्थिति, देशकाल, वातावरण आदि को सामने रखकर किया गया है। दोनों लेखक महान उपन्यास कार थे, इनके उपन्यासों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना साहित्यिक दुनिया में एक अध्याय जोड़ना जैसा प्रतीत हो रहा है।

प्रेमचंद और शरतचन्द्र जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार पर तुलनात्मक अध्ययन करने की इच्छा मेरे मन में 'प्रेसिडेन्सी कॉलेज' में अध्ययन करने के दौरान जागृत हुई। जे. एन.यू. में आकर मेरी यह इच्छा और प्रबल हुई। मेरे गुरुवर और शोध निर्देशक डॉ. ओमप्रकाश सिंह के सलाह मशविरा, सहृदयतापूर्ण अनुग्रह और उदार दृष्टि के कारण यह शोध संभव हो सका है। शोध के दौरान जहां भी मुश्किलें आयीं गुरुवर की उचित सलाह और विविध प्रसंगों पर हुई बातचीत ने मुझे लगातार इस ओर प्रेरित

किया कि मैं अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति, संयम व धैर्य को बनाए रखते हुए शोध को पूर्ण कर सकूं।

समय–समय पर प्रो. मैनेजर पांडेय जी की सलाह ने इस शोध को अग्रसारित करने में मेरी मदद की। अन्य लोगों में मैं विष्णु प्रभाकर जी का उल्लेख अवश्य करना चाहूंगा। उनसे हुई बातचीत ने समय–समय पर मुझे इस शोध में सहायता प्रदान की व मेरा मार्गदर्शन किया। बीमार होने के बावजूद उन्होंने मेरे लिए वक्त निकाला, आज वे यादों में हैं, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा फर्ज है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, साहित्य अकादेमी (दिल्ली), और भारतीय भाषा परिषद (कलकत्ता), के प्रति सदैव आभारी रहूंगा जहां से समय–समय पर दुर्लभ पुस्तकें एवं तथ्य मिलते रहे।

विषय से संबंधित जिन मित्रों व लोगों ने मुझे सहायता प्रदान की उनमें डॉ. विवेकानंद उपाध्याय, राजीवरंजन सिन्हा और आनंद शुक्ल का मैं आभारी रहूंगा। साथ ही शोध को अंतिम रूप देने में भाई राणा रंजन, प्रसिद्ध पर्यावरण वैज्ञानिक विजय पाल, तथा हरेन्द्र जी की मदद के लिए मैं शुक्रगुजार हूं।

जोतिमय

साबरमती छात्रावास,

जे. एन. यू., नई दिल्ली